महाभारत

पांडुलिपियों से समालोचनात्मक संस्करण तक का सफर

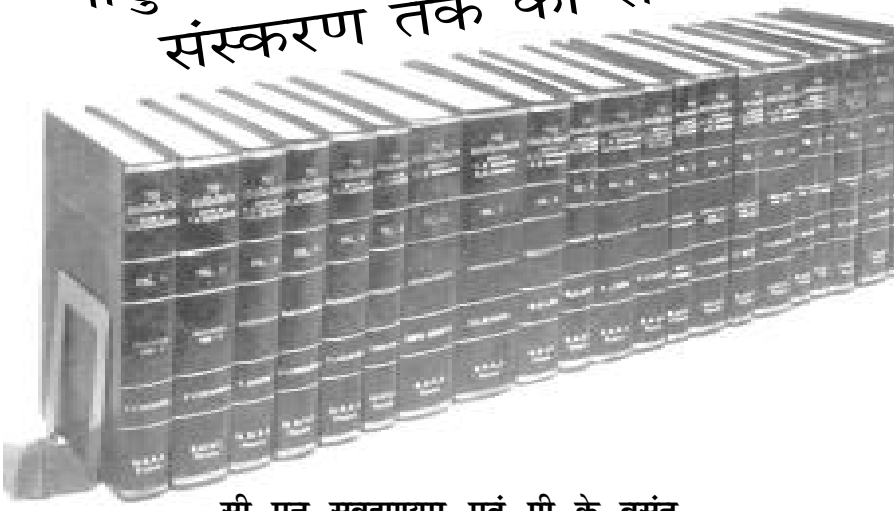

सी. एन. सुब्रह्मण्यम एवं पी. के. बसंत

पिछले अंक में हमने देखा था कि महाभारत के ही अनुसार उसकी शुरुआत मौखिक परंपरा से बहुत प्रभावित थी और कई लोग अलग-अलग तरीकों से उस कहानी का बयान करते रहे थे। कुछ सुनाने वाले उसे विस्तार में, तो कुछ संक्षेप में सुनाते थे। सुनाने वाले भी अलग-अलग लोगों से सुनकर उस कहानी को आगे बढ़ा रहे थे। इस तथ्य को महाभारत के पहले अध्याय में ही काफी सशक्त रूप में उभारा गया है। मौखिक संप्रेषण में बोलने वालों व सुनने वालों की रुचि के अनुरूप बदलाव होता रहता है, यह स्वाभाविक लगता है। यह संप्रेषण अन्य साहित्य की दृष्टि से वांछनीय हो सकता है,

लेकिन उस इतिहासकार के लिए समस्याएं पैदा कर देता है जिसे मूल पाठ्य तक पहुंचना है।

हम जानते हैं कि महाभारत को किसी समय लिपिबद्ध किया गया था और उसके पाठ्य में एक स्थिरता लाने का प्रयास किया गया। विद्वानों का मानना है कि यह काम संभवतः गुप्त-काल में पूरा हुआ होगा। यानी लगभग चौथी या पांचवीं शताब्दी ईसवी में इसका वर्तमान स्वरूप लिपिबद्ध होकर तैयार हुआ होगा। इसी काल से इस बात का ज़िक्र मिलने लगता है कि महाभारत एक लाख श्लोकों की एक रचना है। अगर हम व्यास, वैशंपायन या सूत पौराणिक के महाभारत तक नहीं पहुंच सकते हैं तो क्या हम कम-से-कम इस गुप्तकालीन महाभारत तक पहुंच सकते हैं? एक लिपिबद्ध रचना से हम कम-से-कम यह उम्मीद तो कर सकते हैं।

लेकिन वास्तविकता तो यह है कि हर संप्रेषण में मूल पाठ्य में कुछ-न-कुछ बदलाव होता ही है। संप्रेषण के दौरान लोग अर्थ और भावनाओं पर ज़ोर देते हैं, न कि वाक्य-रचना या शब्द-चयन पर। अर्थ व भावनाओं की निरंतरता होते हुए भी पाठ्य में बदलाव आ जाता है। इस कारण धीरे-धीरे अर्थ के भी नए आयाम खुल जाते हैं। इसके अलावा हर संप्रेषणकर्त्ता अपने श्रोता या पाठक को ध्यान में रखते हुए कुछ बदलाव करता है - जहां उसे लगे कि कोई बात उनकी समझ में नहीं आएगी या उन्हें रास नहीं आएगी, वह बदलाव करने का प्रयास करता है। इन सब बातों के अलावा मूल को समझने में उससे गलती भी हो सकती है। इस तरह के बदलाव लिखित ग्रंथों में भी संभव हैं, खासकर जहां वे ग्रंथ अति लोकप्रिय गाथाओं से संबंधित हों। यह कैसे होता है, इसे आगे देखते हैं।

महाभारत की पांडुलिपियां

यह उन दिनों की बात है जब पुस्तकों की छपाई नहीं हो सकती थी और पुस्तकों की प्रतियां दुर्लभ व अप्राप्य होती थीं। महत्वपूर्ण पुस्तकों की भोजपत्र, ताड़पत्र या कागज़ की प्रतियां कहीं-कहीं मंदिरों, मठों व शाही पुस्तकालयों में ही मिलती थीं। ज़्यादातर लोग लिखने की विधा को जानते ही नहीं थे और विद्वान भी पुस्तकों को कंठस्थ करना पसंद करते थे क्योंकि पुस्तकों की प्रतियां अत्यंत दुर्लभ थीं। पुस्तकों की प्रतियां बनाने में और उनकी त्रुटियां सुधारने में काफी समय लगता था और यह काम आमतौर पर व्यवसायिक लिपिक या छात्र ही करते थे। पुस्तकालयों में कई हस्तलिपियां रखी-रखी खराब हो

जाती थीं - दीमक लगने से, या चूहों के खाने से, या नमी के कारण गलकर। इस प्रकार कई प्राचीन पुस्तकें नष्ट हो गई हैं।

महाभारत अपनी रोचक विषयवस्तु के कारण पूरे भारत में लोकप्रिय रहा लेकिन उसकी पांडुलिपि को लेकर कई मान्यताएं थीं - कि उसे घर में रखने से ही घर में झगड़े होने लगेंगे। और फिर वह इतना बड़ा ग्रंथ जो था ! लगभग एक लाख श्लोक ! इन सबके बावजूद अपनी लोकप्रियता के कारण महाभारत की सैकड़ों हस्तलिपियां बनीं जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक के पुस्तकालयों में संजोकर रखी गईं। यह बात अलग है कि शायद ही किसी एक जगह पूरे महाभारत के सारे श्लोक मिलते हों। कहीं एक पर्वन तो कहीं दूसरा। जिन विद्वानों की महाभारत में विशेष दिलचस्पी थी उन्हें कई मठों, मंदिरों और राजमहलों से संपर्क करना पड़ता था तथा दूर-दूर तक यात्राएं करनी पड़ती थीं।

अठारहवीं शताब्दी में जब भारत पर अंग्रेज़ों का शासन फैला तो वे भारतीय साहित्य, और खासकर महाभारत जैसे ग्रंथों में विशेष रुचि लेने लगे। कई अंग्रेज़ी अफसर अपने कारिंदों को स्थानीय पुस्तकालयों में भेजकर वहां उपलब्ध पुस्तकों की सूची बनवाते थे और रोचक पुस्तकों की प्रतियां बनवाते या सीधे-सीधे हड़प लेते थे। महाभारत का अध्ययन करने वाले अंग्रेज़ विद्वान इस बात से परेशान होने लगे कि तमाम पांडुलिपियों में बहुत अधिक पाठ्यांतर थे। कोई भी पांडुलिपि किसी दूसरी से मेल नहीं खाती थी। यहां तक कि बहुत-सी हस्तलिपियों में कई प्रसंग थे ही नहीं। ऐसा नहीं था कि भारत में किसी ग्रंथ की एक जैसी हस्तलिपियां मिलती ही नहीं थीं। वैदिक साहित्य आदि कई ग्रंथ थे जिनमें इतने पाठभेद नहीं थे। पाठभेदों की यह समस्या विशेषकर महाभारत के साथ अधिक थी।

यह एक विडंबना की स्थिति बनती जा रही थी कि विश्व के महान महाकाव्यों में गिने जाने वाले इस ग्रंथ का कोई निर्णायक पाठ नहीं था। जितने छापेखाने उन्नीसवीं व बीसवीं सदी में महाभारत को छाप रहे थे उतने ही अलग-अलग पाठ थे। बढ़ते राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में यह एक राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का विषय भी बनता जा रहा था। इन्हीं सब बातों के चलते सन् 1919 में पुणे की भंडारकर ओरियेंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट नामक संस्था से संबंधित प्रतिष्ठित विद्वानों ने तय किया कि संपूर्ण महाभारत का एक समालोचनात्मक संस्करण तैयार किया जाएगा, चाहे उसमें जितने भी साल लगें, कितने ही विद्वानों का परिश्रम लगे या जितना भी धन लगे। (वैसे इस काम में कम-से-कम चार पीढ़ी के विद्वान लगे।) इस काम का शुभारंभ प्रकांड पंडित आर. जी. भंडारकर ने अपने ही हाथों से *नारायणं नमस्कृत्य* वाले श्लोक को उतारकर किया। सन् 1925 में इसके प्रधान संपादक बने वी. एस. सुकथणकर। इन्हीं के मार्गदर्शन में इस पूरे काम की रूपरेखा तैयार की गई। लेकिन दुर्भाग्यवश पहले पर्वन के प्रकाशन के कुछ समय बाद ही उनका निधन हो गया। आमतौर पर महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण का मुख्य श्रेय सुकथणकर को ही दिया जाता है।

पुणे का भंडारकर संस्थान जहां महाभारत के
समालोचनात्मक संस्करण का कार्य सम्पन्न हुआ।

प्राचीन या मध्यकालीन साहित्य का समालोचनात्मक संस्करण तैयार करना यूरोपीय साहित्य अध्ययन में एक स्थापित विधा बन चुकी थी। इसका प्रमुख उद्देश्य था अलग-अलग पांडुलिपियों का मिलान करके, अशुद्ध पाठों को हटाकर शुद्ध पाठ तैयार करके, लेखक के मूल पाठ को फिर से उजागर करना। इसके लिए कई तरीके व तकनीक विकसित की गई थीं। छपाई के आने से इसकी खास ज़रूरत बढ़ गई थी क्योंकि छपाई के माध्यम से किसी एक पाठ को निर्णायक पाठ बनाया जा सकता था। भारत में भी छपाई के प्रभाव में कई पारंपरिक विद्वानों ने तमिल या संस्कृत साहित्य के संदर्भ में समालोचनात्मक तकनीकों का इज़हार किया था।

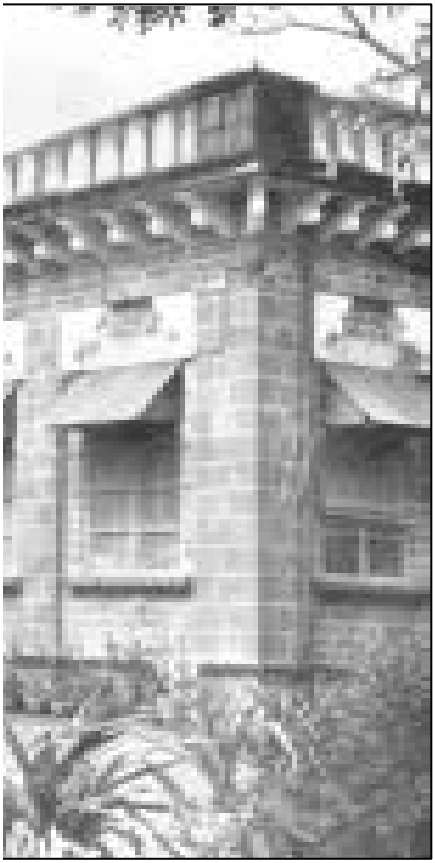

श्री. वी. एस. सुकथणकर

भंडारकर संस्थान के इन विद्वानों के दृष्टिकोण का ज़िक्र यहां ज़रूरी है। इनमें ज़्यादातर पारंपरिक विद्वान थे और महाभारत के प्रति उनकी आस्था और श्रद्धा अपार थी। हालांकि समालोचना की विधा पाश्चात्य थी, पर उससे उन्हें परहेज़ नहीं था। उस विधा को सीखने और उसे निर्भीक होकर दृढ़ता के साथ अपनी संस्कृति के कालजयी ग्रंथ पर प्रयोग करने के लिए वे तत्पर थे। समालोचनात्मक क्रिया से महाभारत पर उनकी श्रद्धा कम नहीं, बल्कि परिष्कृत हुई। वैचारिक खुलापन, अपनी जड़ों पर विश्वास और उसमें आई विकृतियों को सुधारने की ललक - यह गुण शायद उस समय चल रहे राष्ट्रवादी आंदोलन की देन थी।

महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण तैयार करना ऐसा वृहद काम था कि कोई महानायक ही उसे करने का साहस कर सकता था। एक लाख श्लोकों के प्रत्येक शब्द के जितने पाठ पांडुलिपियों में उपलब्ध थे उन्हें एक ही पन्ने पर दर्शाना और फिर यह पहचानना कि इनमें से सही पाठ कौन-सा हो सकता है और कौन-सा श्लोक बाद में जोड़ा गया है, और उसके आधार पर एक संशोधित पाठ तैयार

श्रीरंगपट्टनम से प्राप्त हुई महाभारत की हस्तलिपि के द्रोण पर्व का एक चित्रात्मक पृष्ठ। इस चित्र में अश्वत्थामा भीम-अर्जुन से युद्ध कर रहे हैं। अश्वत्थामा के रथ पर लगे ध्वज पर सिंह का मुंह बना है और अर्जुन के रथ के ध्वज पर हनुमान का चित्र है। पांडुलिपि के अंतिम पृष्ठ पर दी गई जानकारी के मुताबिक इस पांडुलिपि के लिपिकार चलितग्राम के गोविंद शर्मा वल्द रत्नाकर हैं। सन् 1670 के आसपास तैयार की गई इस पांडुलिपि को मैसूर के तिम्माजी पंडित के लिए तैयार किया गया था। ऐसा माना जाता है कि तिम्माजी पंडित स्थानीय वोडियार राजदरबार के महत्वपूर्ण व्यक्ति थे।

करना...। पहले हम यह तो समझ लें कि पाठों में भेद कैसे और क्यों आ जाते हैं।

पांडुलिपियों में पाठभेद

मलयालम में एक कहावत है कि तीन लिपिकार एक वाक्य को एक-दूसरे से उतारते-उतारते 'समुद्र' को 'मूत्र' बना देते हैं। पहला लिपिकार जल्दी में 'स' ठीक से नहीं लिखता है, दूसरा 'स' को छोड़ ही देता है, तीसरे को लगता है कि 'मुद्र' कोई शब्द नहीं है, उसे 'मूत्र' होना चाहिए। यह बात कि पांडुलिपियों को उतारने में गलतियां आ जाती हैं, एक सर्वविदित समस्या थी। आमतौर पर विद्वान ऐसी गलतियों को आसानी से पहचान लेते थे क्योंकि वे यह देख पाते थे कि कोई शब्द अपने संदर्भ में सही बैठ रहा है या नहीं। अगर संदर्भ समुद्र पार करने का हो तो ज़ाहिर है कि कोई भी विद्वान यह पहचान लेगा कि लिपिकार ने 'मूत्र' शब्द का प्रयोग गलती से किया है। लेकिन सभी गलतियां इस तरह पकड़ में नहीं

आतीं। समय के साथ ये गलतियां बढ़ती ही जातीं। गलत पाठों को, आगे आने वाले लिपिकार अपनी प्रतिलिपियों में उतारते जाते और वे स्थापित पाठ हो जाते।

पाठभेद दूसरी तरह के भी होते थे। जैसा हमने पहले बताया था कि भोजपत्र या ताड़पत्र पर लिखे ग्रंथ अक्सर क्षतिग्रस्त हो जाते थे। अगर मूल पांडुलिपि में कुछ पन्ने गायब हों तो लिपिकार उन हिस्सों को उतारने में असमर्थ हो जाते थे। या फिर अगर उस पांडुलिपि में किसी दूसरे ग्रंथ के कुछ पन्ने जुड़े होते तो उसकी प्रतिलिपि में भी उन पन्नों को जोड़ लिया जाता था। कभी ऐसा भी होता था कि मूल पाठ में किसी विद्वान ने अपनी टीप-टीका लिखी और बाद में वह भी प्रतिलिपि में शामिल हो गई।

महाभारत जैसी वीरगाथाओं में एक और दिलचस्प तरीके से पाठभेद प्रविष्ट हो जाते थे। कृष्ण, अर्जुन, भीम, कर्ण जैसे पात्रों के आधार पर अनेक उपगाथाएं लोक-कला, खासकर नृत्य, नाटक या गायन के द्वारा, जगह-जगह प्रचलित थीं। उनमें उन वीर पुरुषों व महिलाओं की उस खास इलाके से संबंध जोड़कर गाथाएं सुनाई जाती थीं (जैसे अर्जुन या भीम की स्थानीय राजकुमारी से शादी या राजा से युद्ध या दोस्ती; कृष्ण-लीला की कथाएं आदि)। अक्सर महाभारत की क्षेत्रीय प्रतियों में इन गाथाओं को जोड़ लिया जाता था, भले ही वे मूल में नहीं रही हों। क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली प्रतिलिपियों में कुछ किस्से-कहानी या विवरण शामिल होते हैं जो दूसरे क्षेत्र से आए महाभारत की पांडुलिपियों में नहीं मिलते।

पांडुलिपियों की वंशावलियां

कल्पना कीजिए कि पांचवीं शताब्दी (गुप्त-काल) में बनारस के कुछ विद्वानों ने मिलकर महाभारत का एक प्रामाणिक संस्करण तैयार किया। उसके महत्व को समझते हुए दूर-दराज़ के कई राजाओं, मंदिरों व मठों ने उसकी प्रतिलिपि बनाने के लिए अपने लिपिकारों को भेजा होगा। मान लीजिए उनमें से एक तमिलनाडु के कांचीपुरम का और दूसरा मालवा के उज्जैन का लिपिकार है। दोनों बड़ी कठिनाइयों से हज़ारों कोस पार करके बनारस जाकर बड़े जतन से अपने काम में लग जाते हैं। उन्हें पूरे एक लाख श्लोक नकल करके, जांचकर प्रतिलिपि बनाने में कई साल लग जाते हैं। लेकिन जाने-अनजाने में दोनों लिपिकार कहीं-कहीं गलती कर बैठते हैं, कहीं वर्तनी में गलती हो जाती है, कहीं एकाध श्लोक रह जाता है, कहीं श्लोक आगे-पीछे लिखे जाते हैं, वगैरह-वगैरह। लेकिन कांची के लिपिकार ने जो गलती की वह उज्जैन के लिपिकार की गलतियों से अलग होगी।

दोनों महाशय एक महान काम को सफलता से पूरा करके अपने-अपने नगर वापस लौट जाते हैं जहां निश्चय ही उनका भव्य स्वागत हुआ होगा। वहां पहुंचते ही वहां के राजा व विद्वान तय करते हैं कि इसकी दो-चार और प्रतियां हो जाएं ताकि पहली प्रति को क्षति पहुंचने पर भी दिक्कत न हो। अब कांची में जो प्रतियां बनेंगीं उनमें वो गलतियां शामिल रहेंगी जिन्हें कांची के मूल लिपिकार ने किया था। उसी तरह उज्जैन में बनी प्रतियों में उज्जैन वाले लिपिकार की गलतियां शामिल होंगी।

बाद के लिपिकारों ने कुछ और गलतियां की होंगी मगर उन सबकी प्रतियों में वे गलतियां ज़रूर शामिल होंगी जिन्हें उज्जैन के साहसी लिपिकार ने किया होगा। यानी अब महाभारत की दो प्रमुख शाखाएं हो गईं, एक कांची की और दूसरी उज्जैन की। उन शाखाओं की हर प्रतिलिपि में उस मूल लिपिकार की गलतियां शामिल होने की संभावना काफी अधिक होती है।

अब और कल्पना कीजिए कि कांची की प्रतिलिपि एक ऐसे विद्वान के हाथ लगे जो महाभारत संबंधित कई आख्यानों व गाथाओं से परिचित रहा हो। अगर उसे यह लगे कि इस प्रतिलिपि में तो कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण घटनाएं व विवरण शामिल नहीं हैं तो वह यही सोचेगा कि ये बातें भूलवश छूट गईं हैं और वह उन्हें अपनी प्रति में शामिल करने का प्रयास करेगा। धीरे-धीरे उस क्षेत्र के लोग इसे ही प्रामाणिक प्रति मानेंगे।

अब मान लीजिए कि केरल के कोल्लम में भी लोग चाहते हैं कि उनके पास महाभारत की एक प्रति हो, तो वे भी अपने लिपिकार को भेजेंगे। लेकिन इस बात को देखते हुए कि बनारस की तुलना में कांचीपुरम काफी पास है वे अपने लिपिकार को प्रतिलिपि बनाने कांची भेजेंगे। तो अंत में कोल्लम जो प्रति पहुंचेगी उसमें वही गलतियां होंगी जो कांची के मूल लिपिकार ने की होंगी और वे बातें भी शामिल होंगी जिन्हें कांची के विद्वान ने जोड़ा था। इस तरह पूरे दक्षिण भारत में कांची शाखा की उप-शाखाएं फैल जाएंगी। लेकिन ये गलतियां या जोड़-घटाव उज्जैन की प्रतियों में या उससे बनाई प्रतिलिपियों में नहीं मिलेंगे। उनमें कुछ दूसरी बातें होंगी।

धीरे-धीरे 1500 सालों में जब सैकड़ों स्थानों पर हज़ारों प्रतिलिपियां बनीं तो महाभारत की कई शाखाएं सामने आईं। इनमें प्रमुख हैं दक्षिण और उत्तर भारतीय शाखाएं।

लिपि

लिपि सदैव बदलती रहती है। एक शताब्दी की लिपि और दूसरी के बीच अंतर आ जाता है और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच भी अंतर आ जाता है। जब गुप्त-काल में महाभारत को लिखा गया होगा तब गुप्त ब्राह्मी-लिपि प्रचलित थी। उसके बाद देवनागरी का चलन शुरू हुआ। यही नहीं, कश्मीर में शारदा-लिपि, बंगाल में बंगाली, केरल में मलयालम और तमिलनाडु में ग्रंथ-लिपि का चलन था। महाभारत की जो पांडुलिपियां मिलती हैं वे इन सभी लिपियों में पाई जाती हैं। भाषा उन सबकी संस्कृत ही है मगर लिपि अलग-अलग हैं। एक लिपि से दूसरी लिपि में बदलने से भी अलग-अलग प्रतियों के बीच अंतर आ जाता है और उनके बीच मिलान करना मुश्किल काम हो जाता है।

समालोचना

इसमें सबसे पहला काम तो पूरे देश में प्रचलित पांडुलिपियों को इकट्ठा करना और उनकी क्रमबद्ध सूची बनाना - कौन-सी प्रति कहां से प्राप्त हुई, इस नकल को कब, कहां और किसने तैयार किया था। फिर इन सबका मिलान करके पता करना कि इन पांडुलिपियों की कितनी शाखाएं या वंश हैं और सारी प्रतियों को अपने वंश के अनुसार जमाना। फिर उनमें से पहचानना कि उन वंशों में कौन-सा ज़्यादा

वरीयता रखता है यानी कौन-सी प्रति मूल के सबसे निकट है।

यह जटिल काम कितना रोचक भी हो सकता है इसका अहसास करने के लिए आप यह तहकीकात करें। यहां हम एक वाक्य की छः प्रतियां दे रहे हैं। इनमें से एक मूल है और उससे दो शाखाएं निकल रही हैं। आपको पता करना है कि मूल वाक्य कौन-सा है, दो शाखाएं कौन-सी हैं और किस प्रति को आप सबसे कम वरीयता देंगे। (अभ्यास अगले पृष्ठ पर)

अगर कोई श्लोक या प्रसंग किसी एक ही प्रति में पाया गया तो उसे प्रामाणिक नहीं माना जाएगा। जो बातें दो या अधिक शाखाओं में उपस्थित हैं उन्हें अधिक वरीयता दी जाएगी। इस तरह हरेक श्लोक और यहां तक कि हरेक शब्द का मिलान करते हुए समालोचनात्मक संस्करण तैयार किया जाता है।

महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण

यह काम सन् 1919 में शुरू हुआ और पहले पर्वन - आदिपर्वन का प्रकाशन 1933 में हुआ। आदिपर्वन के इस संस्करण को तैयार करने के लिए कई लिपियों में लिखी गई 237 प्रतियों को देखा गया और इनमें से 10 प्रतियों को सबसे अधिक वरीयता दी गई। 18 पर्वों की समालोचना का काम सन् 1966 में सम्पन्न हुआ। 22 सितंबर 1966 को इसकी औपचारिक घोषणा तत्कालीन भारतीय राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने एक विशेष समारोह में की। समालोचनात्मक संस्करण में कुल 19 जिल्द या 13000 पन्ने थे। इनमें मुख्य रुप से महाभारत के प्रचलित सभी श्लोकों को समाविष्ट करके पाठभेदों का विश्लेषण किया गया था।

इसके बाद 1971 में एक निर्णायक संस्करण का प्रकाशन शुरू हुआ जिसमें केवल उन श्लोकों को रखा गया जिन्हें संपादकों ने प्रामाणिक माना। इसे समालोचना द्वारा संस्थापित संस्करण (TEXT AS CONSTITUTED IN THE CRITICAL EDITION) कहा जाता है। इसमें केवल 74,000 श्लोक हैं यानी लगभग एक चौथाई महाभारत के श्लोकों को प्रामाणिक नहीं माना गया। इसे सन् 1971 और सन् 1976 के बीच पांच जिल्दों में (3150 पृष्ठ) प्रकाशित किया गया। यानी जो काम सन् 1919 में शुरू हुआ वह पूरे 57 साल बाद सम्पन्न हुआ। दरअसल इसकी सांस्कृतिक अनुक्रमणिका की जिल्दों के प्रकाशन का काम अब भी जारी है।

इस संस्थापित संस्करण के संपादकों ने पाया कि महाभारत से संबंधित कई लोकप्रिय प्रसंग बाद में क्षेत्र विशेष में जोड़े गए थे। उदाहरण के लिए संस्थापित संस्करण में द्रौपदी के चीरहरण का प्रसंग शामिल नहीं है। यह प्रसंग दक्षिणी शाखा में ही प्रायः पाया जाता है, अन्य शाखाओं में नहीं है। द्यूत-क्रीड़ा और उसमें द्रौपदी के हारने वाला प्रसंग तो है लेकिन चीरहरण और कृष्ण द्वारा द्रोपदी की लाज रखना संस्थापित संस्करण में नहीं है। यह माना जाता है कि दक्षिण भारत में जहां कृष्ण-भक्ति एक आंदोलन के रूप में शुरू हुई वहां कृष्ण की इस महत्वपूर्ण लीला को महाभारत में समाविष्ट करना ज़रूरी समझा गया होगा और इस प्रसंग को जोड़ दिया गया।

पहले की कोशिशें

भंडारकर संस्थान द्वारा की गई पहल से पूर्व भी इस दिशा में कुछेक प्रयास हुए हैं, जिनमें महाभारत की कई हस्तलिपियों की समीक्षा करके एक शुद्ध पाठ्य तक पहुंचने की कोशिश हुई।

कोशिश करने वालों में महाराष्ट्र के नीलकंठ का नाम प्रमुख है। सन् 1675 में नीलकंठ ने वाराणसी में विविध पांडुलिपियों की समीक्षा की और इनके अंतरों पर काफी विचार किया। नीलकंठ ने विभिन्न पाठों को देखकर महाभारत का एक शुद्ध पाठ तैयार करने की कोशिश की। इस कार्य में उन्होंने पूर्ववर्ती टीकाओं (जैसे अर्जुन मिश्र की टीका) का इस्तेमाल भी किया।

समय के साथ नीलकंठ का संस्करण लोकप्रिय बनता गया और लोगों ने उसे मानक संस्करण के रूप में स्वीकार किया। नीलकंठ का पाठ्य मूलतः उत्तर भारतीय पाठ्य होने के बावजूद इसमें दक्षिणी पाठ के कई तत्व शामिल हैं।

सन् 1900 में प्रताप चंद्र राय ने भी महाभारत की कई हस्तलिपियों की समीक्षा करके कलकत्ता से महाभारत का जनता संस्करण प्रकाशित किया। इस संस्करण की दक्षिण भारतीय पंडितों ने यह कहकर आलोचना की कि इसमें ऐसे बहुत-से महत्वपूर्ण अंशों को छोड़ दिया गया है जो दक्षिण भारतीय संस्करणों में मौजूद हैं। इन आलोचनाओं के जवाब में प्रताप चंद्र राय का मत था कि ऐसा कोई एक पाठ तैयार कर पाना तो मुश्किल है जो सबको पसंद आए और एक शुद्ध महाभारत की खोज में उस अंश को ढूंढना पड़ेगा जो भारत की सभी हस्तलिपियों में उपस्थित हो।

ऐसे और कई प्रसंग भी संभवतः मूल गुप्तकालीन महाभारत में नहीं थे। कई प्रसंगों में बाद की मान्यताओं के अनुरूप कुछ फेर-बदल भी किया गया। उदाहरण के लिए वारणावत में लाख के महल की बात लें। पाठकों को याद होगा कि दुर्योधन ने विरोचन की मदद से एक भव्य लाख का महल बनवाया जहां कुंती व पांडवों को ठहराया गया। योजना यह थी कि एक दिन जब ये छः लोग सो रहे होंगे, तब महल को आग लगा दी जाएगी, वे सब मर जाएंगे और किसी पर शक नहीं होगा। लेकिन विदुर के माध्यम से यह साज़िश पांडवों को पता चल जाती है और वे एक रात सुरंग से भाग जाते हैं। लेकिन असलियत का पता न लगे इसलिए वे महल में अकस्मात आकर रुकी एक निषाद बुढ़िया और उसके पांच लड़कों को महल में सोते हुए छोड़कर, उसे आग लगा देते हैं। सुबह लोग यही सोचते हैं कि कुंती

अभ्यास

मूल प्रति कौन-सी है?

महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण के काम की जटिलता को समझने के लिए यहां बतौर अभ्यास 6 वाक्य दिए गए हैं। इनमें से एक मूल प्रति है और बाकी उससे की गई प्रतियां (नकल)। इन नकलों की दो शाखाएं हैं। आपको पता करना है कि मूल प्रति कौन-सी है, दो शाखाएं कौन-सी हैं, और कौन-सी नकल किस से उतारी गई है। अपना उत्तर नीचे दी वंशावली में लिखिए।

(E) कबीर उस जाति में पालित हुए थे जो न तो हिन्दुओं द्वारा समादृत था, व तुर्कों द्वारा स्वीकृत। वह कुल-परा से ज्ञान के अयोग्य समझा जाता था।

(N) कबीर उस समाज में पले हुए थे जो न तो हिन्दुओं द्वारा समाहत था, न मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से रवीकुत। वह कुल परंपरा से ज्ञानरंजन के अयोग्य समझा जाता था।

(X) कबीर उस समाज में पालित हुए थे जो न तो हिन्दुओं द्वारा समादृत था, मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकृत। वह कुल-परंपरा से ज्ञानार्जन के अयोग्य समझा जाता था।

(J) कबीर उस जाति में पालित हुए थे जो न हिन्दुओं समीप था, न तुर्कों द्वारा स्वीकृत। वह कुल-परा से जान के अयोग्य समझा जाता था।

(S) कबीर उस जाति में पालित हुए थे जो न तो हिन्दुओं द्वारा समादृत था, न तुर्कों द्वारा स्वीकृत। वह कुल-परंपरा से ज्ञान के अयोग्य समझा जाता था।

(A) कबीर उस समाज में पले जो न तो हिन्दुओं द्वारा समादृत था, मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकृत। वह कुल-परंपरा से ज्ञानरंजन के अयोग्य समझा जाता था।

वंशावली की तालिका तैयार करते समय हरेक पाठ के सामने दिए संकेत को यहां लिख सकते हैं

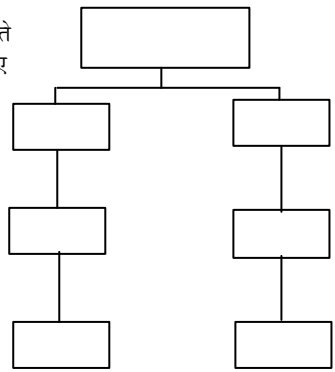

और पांडव जलकर मर गए। निर्दोष निषादों को इस तरह मार डालना बाद के विद्वानों को रास नहीं आया। शायद उन्हें लगता था कि यह पांडवों के चरित्र से मेल नहीं खाता है। इसलिए बाद की प्रतियों में यह बात जोड़ी जाती है कि वह निषाद महिला वास्तव में दुर्योधन और विरोचन के साथ थी और पांडवों को नुकसान पहुंचाने के लिए आई थी।

यह सवाल उठ सकता है कि क्या इस तरह हम उस मूल महाभारत तक पहुंच सकते हैं जिसे व्यास ने रचा था या वैशंपायन या सूत पौराणिक ने सुनाया था? समालोचनात्मक संस्करण के संपादकों का मानना है कि हम कभी भी उस मूल तक नहीं पहुंच सकते हैं - हम केवल गुप्त-काल की महाभारत के निकट पहुंचने का प्रयास कर सकते हैं। अगर हम यह स्वीकार करें कि महाभारत की घटनाएं ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी के आसपास की हैं तो उनके और गुप्त कालीन संस्करण के बीच एक सहस्राब्दी से भी अधिक अंतर था। इस बीच कहानी में क्या अंश जोड़े व घटाए गए हम पता नहीं कर सकते हैं। (इस तरह के अनुमान के लिए हमें महाभारत का ऐतिहासिक अध्ययन करना होगा - इसके बारे में हम अगले अंक में पढ़ेंगे)। गुप्तकालीन महाभारत तक भी हम केवल अनुमान से पहुंच सकते हैं। यह दावा नहीं किया जा सकता है कि संस्थापित महाभारत ही मूल गुप्त कालीन पाठ्य है। लेकिन हम यह ज़रूर कह सकते हैं कि इस बात की संभावना काफी अधिक है कि इस संस्करण में जो श्लोक हैं वे गुप्त कालीन महाभारत में भी रहे होंगे।

तो यह थी कहानी महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण की। अपनी परंपरा और विश्वास से जुड़ी बातों को आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों की मदद से देखकर परिष्कृत करने के प्रयास की, परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष व मेल की।

सी. एन. सुब्रह्मण्यम: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।
पी. के. बसंत: दिल्ली में स्थित जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।

(यह लेख एकलव्य द्वारा प्रकाशित शीरीन रत्नागर की पुस्तक *भारतीय इतिहास के स्रोत* के एक अध्याय *महाभारत का समालोचनात्मक संस्करण* से प्रेरित है। इस विषय को और गहराई में समझने के लिए इस अध्याय को ज़रूर पढ़ें। अगर अंग्रेज़ी में पढ़ना हो तो महाभारत के समालोचनात्मक संस्करण की पहली जिल्द में छपी वी. एस. सुकथणकर की लंबी और विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना को पढ़ सकते हैं।)

इतिहास में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए एकलव्य का प्रकाशन
भारतीय इतिहास के स्रोत (प्राचीन काल - भाग:1)
लेखन - शीरीन रत्नागर एवं अजय दांडेकर
मूल्य : 100 रुपए
संपर्क: एकलव्य
ई - 7/453, एच.आई.जी. अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र. पिन - 462016
फोन - 0755 - 2463380, 2464824